International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5A22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2016; Page No. 42-44

स्त्री कितनी दलित

विवेक गुप्ता

शोध छात्र (हिंदी साहित्य) महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी, जयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना

दलित का शाब्दिक अर्थ है १- दलन किया हुआ। इसके अंतर्गत हर वह व्यक्ति आता है जिसका किसी भी प्रकार से, कभी भी शोषण, उत्पीडन हुआ है। रामचंद्र वर्मा ने अपने शब्दकोष में दलित शब्द का अर्थ लिखा है मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ। हालाँकि डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के आन्दोलन के बाद यह शब्द हिंदू सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से अस्पृस्य समझी जाने वाली तमाम जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयोग होता है। अब दलित पद अस्पृस्य समझी जाने वाली जातियों कि आन्दोलन धर्मिता का परिचायक बन गया है। पर इस शब्द का प्रयोग करने का मुख्य प्रयोजन उस वर्ग के लिए है जो शोषित, दबा और कुचला हुआ है। जिसे आज भी समाज में वह सभी अधिकार या सम्मान नहीं मिले हैं जो कि एक सभ्य समाज में उस वर्ग को मिलना चाहिए। यदि सूक्ष्मता और गहनता से अध्ययन किया जाये और वर्तमान सामाजिक स्थिति का जायजा लिया जाये तो आश्चर्य होगा के २१ वी सदी जिसमे धरती के हर कोने का ज्ञान प्राप्त कर लिया गया है। मानव चाँद, मंगल, बृहस्पति और प्रकृति के बहुत से रहस्यों को जानने का दम भरता है परन्तु बहुत दुःख कि बात है कि आज भी समाज में मौजूद आधी आबादी के बारे में सोचने का, उसके उत्थान के बारे में सोचने का किसी के पास समय नहीं है। यदि गंभीरता से महिलाओं कि सामाजिक स्थिति पर विचार किया जाये तो उपरोक्त दलित की परिभाषा में महिलाएं पूरी तरह से फिट बैठेंगी। महिलाएं चाहे उच्च वर्ग, पिछड़ा वर्ग या फिर दलित वर्ग की हों, सबकी हालत कमोबेश एक जैसी है।

महिलाएं आज भी शोषित और पीड़ित हैं:

महिलाओं की वर्तमान स्थिति का पता लगाने के लिए दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों में सर्वे किया गया जिसके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए एवं ये परिणाम उस समाज को सोचने पर मजबूर करते हैं जो यह दावा करता है कि आज समाज में महिलाओं को बराबरी का दर्जा मिल गया है और वह अब पुराने समय की तरह दलित और शोषित नही रही।

प्राइवेट सेक्टर की कामकाजी महिलाओं की स्थिति का जायजा लेने के लिए दिल्ली के नरेला स्थित एक जूट के बैग बनाने वाली फैक्ट्री, जहाँ लगभग ४० महिला कर्मचारी काम कर रहीं थी, इन ४० महिलाओं की काम करने कि स्थिति अत्यंत दयनीय थी। इन्हें देख कर लगा कि ये सभी दलित होंगी। इन ४० महिला कर्मचारियों कि जातिगत स्थिति जानने के बाद घोर आश्चर्य हुआ। इन ४० में से १८ ब्राह्मण, ५ बनिया, ४ राजपूत, २ भूमिहार, २ जाट और केवल ९ महिलाएं ही दलित जाति से सम्बन्धित थी। १८ ब्राह्मण में से १० हरियाणा के सोनीपत जिला की, ५ उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले की, २ हिमाचल प्रदेश, १ दिल्ली से सम्बन्धित थी। ब्राह्मण कहने पर लगता है कि जैसे काफी पढ़े लिखे और उच्च जाति के लोग होंगे परन्तु उनकी हालत देख कर भ्रम टूट गया। उनसे इन शौचनीय परिस्थितियों में काम करने की वजह पूछने पर उनमे से एक ने बताया कि उनमें से अधिकतर के पति शराब, नशाखोरी और जुए इत्यादि की लत में पड़े हुए थे। एक ने यह भी बताया कि उसके ४ बच्चें हैं और पति ने दूसरी औरत के चलते उसे छोड़ दिया था। बच्चों को पालने के लिए उसे इस दयनीय हालात में काम करना पड रहा था।

फैक्ट्री के मालिक से पूछने पर कि उसने सिर्फ औरतों को ही काम पर क्यों रखा है जबकि आदमी इसी काम को अधिक तेज़ी से कर सकते है तो मालिक ने बताया कि महिलाएं पुरुषों कि बजाये अधिक विश्वनीय, इमानदार, प्न्चुअल होती है और औरतों के साथ गुटबाजी का भी लफड़ा नहीं रहता। सबसे बड़ी बात कि वह कम पैसो में काम करने में राज़ी भी हो जाती हैं। इसी तरह के हालात कमोबेश बवाना और बदरपुर इलाकों में स्थित फैक्ट्रियो में भी देखने को मिला। वहां काम करने वाली महिलाओं की स्थिति भी कुछ ठीक नही थी।

दिल्ली स्थित एक सरकारी हस्पताल डॉ0 राम मनोहर लोहिया हस्पताल से सूचना के अधिकार के अंतर्गत प्राप्त सूचना के अंतर्गत वहां लगभग ५१३ महिला कर्मचारी हाऊस किपिंग का काम करती हैं। हाऊस किपिंग से तात्पर्य साफ-सफाई और अन्य रख-रखाव के काम से है। इन ५१३ महिला कर्मचारियों में से ६३% उच्च जाति, ७% पिछड़ा वर्ग और शेष ३०% महिलाएं दलित वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं। पारंपरिक तौर पर साफ़-सफाई के काम को दलित वर्ग से जोड़कर देखा जाता है और उच्च वर्ग के लोग सामान्य: ये काम नहीं करते परन्तु घर चलाने और बच्चों को पालने के लिए उच्च वर्ग की महिलाएं भी इस काम को करने से गुरेज नहीं करती।

उपरोक्त दोनों सर्वे यह दर्शाते हैं कि महिलाओं की स्थिति, चाहे वह उच्च वर्ग की हों, पिछड़ा वर्ग की या फिर दलित वर्ग की, सामाजिक परिस्थितियों के चलते उन्हें वह काम भी करने पड़ते हैं जिनमे उन्हें जानवरों जैसे हालात का सामना करना पड़ता है।

कुछ विद्वानों ने यह तर्क भी दिया कि प्राइवेट नौकरी, सरकारी नौकरी की तुलना में अधिक कष्टदायक होती है और प्राइवेट नौकरी में महिलाओं से अधिक काम लिया जाता है। सरकारी नौकरी एक प्रतिष्ठित कार्य की श्रेणी में आता है, किरण बेदी सरीखी कई महिलाओं ने सरकारी नौकरी में पुरुषों के वर्चस्व को चुनौती देते हुए उसके द्वार महिलाओं के लिए खोल दिए। आज सरकार भी सरकारी नौकरी में महिलाओं कि भागीदारी सुनिश्चित के लिए प्रयासरत है। महिलाओं को बहुत सी छूट दी गयी है ताकि वह घर और दफ्तर के काम में सामंजस्य बिठा सकें।

परन्तु बहुत सी सरकारी कर्मचारी महिलाओं से बात करने पर उनकी स्थिति में कुछ सुधार होता नहीं दिखाई देता। उनका मन टटोलने पर अधिकतर महिलाएं साफगोई से यह स्वीकार करती हैं कि जैसा दिखाया जाता है कि उन्हें अधिक आजादी है, वह अधिक स्वतंत्र है, ऐसा व्यावहारिक रूप से सत्य नहीं है। उन्हें तो उल्टा दफ्तर के काम के साथ-साथ घर के भी पूरे काम अकेले ही करने पड़ते हैं।

सरकारी दफ्तर में काम करने वाली मंजू बताती हैं कि उन्हें न केवल दफ्तर बल्कि घर में भी पूरा काम अकेले ही करना पड़ता है। महीने की तनख्वाह से केवल आने-जाने का किराया ही नसीब होता है। बाकी खर्चों के लिए सास-ससुर कि

तरफ मुंह बाये देखना पड़ता है। पति निकम्मा है कुछ कमाता नहीं तो उससे किसी भी मदद की कोई उम्मीद नहीं है।

एक अन्य कामकाजी महिला ऊषा बताती हैं कि वह समूह 'ख' सेवा में हैं और उन पर पूरे अनुभाग कि जिम्मेदारी है जिसे वह बड़ी तत्परता और जिम्मेदारी से निभाती हैं। परन्तु उन्हें घर या घर वालों की तरफ से अपने मन मुताबिक कपडे पहनने और कहीं आने जाने कि आज़ादी नहीं है। दरअसल उनके पति को लगता है वह पूरी तरह परिपक्व नहीं हैं और वह उनकी सुरक्षा के प्रति अत्यधिक चिंतित रहते हैं। खुद के पति के ही विश्वास न करना उन्हें मन ही मन बहुत उदास कर जाता है।

एक अन्य सरकारी कर्मचारी प्रियंका जो समूह 'घ' सेवा में हैं। उन्हें रोजाना गुडगाँव से दिल्ली इंडिया गेट के पास स्थित उनके दफ्तर में आना-जाना पड़ता है। उनका सफ़र का समय रोजाना ४ घंटे का है। ८ घंटे कि ड्यूटी के पश्चात उनके अन्दर खड़े होने की भी हिम्मत शेष नहीं रहती। उन्हें ननद और सास से गृह-कार्य में कोई सहयोग नहीं मिलता। उन्हें घर के सारे काम खुद ही निपटाने पड़ते हैं। कारण पूछने पर वह बताती हैं कि पति उनकी नहीं सुनते। विरोध की भावना मन में होते हुए भी वह विरोध नहीं कर पाती क्योंकि मायके वाले गरीब हैं और बेटी के घर में झगडे का सदमा वह बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे। उनकी इज्जत का ख्याल है इसलिए जहाँ हूँ, जैसे हूँ, पड़ी हूँ।

उपरोक्त तीनो और इनके जैसी अन्य कामकाजी महिलाओं की हालत भी ऐसी ही है। इन केस स्टडी से यह तो स्पष्ट है ये महिलाएं कहने को तो आत्मनिर्भर हैं पर आज भी जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें पुरुषों के सहारे की आवश्यकता महसूस होती है। मानसिक रूप से वह आज भी यह स्वीकार नही कर पाई हैं कि उनका जीवन बगैर किसी पुरुष के सहारे के भी चल सकता है। शुरू से ही उनको इस प्रकार से ट्रेन किया जाता है कि उनका अस्तित्व पुरुष के बिना सम्भव नहीं है। दफ्तर के लिहाज से आत्मनिर्भर होते हुए भी उन्हें एक अदृश्य मानसिक पीड़ा को झेलना पड़ता है और सबसे दुखद बात तो यह है कि वह अपना यह दुःख किसी से साँझा भी नहीं कर सकती हैं।

ऐसा नहीं है कि महिलाओं के मन में विद्रोह कि भावना नहीं उठती। पूछने पर उर्मिला बताती हैं कि कभी-कभी मन करता है कि मन का सागर किसी के सामने उड़ेल कर उसे हल्का कर ले परन्तु डर लगा रहता है कि उनकी स्थिति का कोई फायदा उठा कर, कल को उसे ही परेशान न करने लगे और उसका दुरूपयोग ही न करने लगे। यदि कोई भला मानुष उनके हालात समझे और उसकी मदद करने की कोशिश करे तो हो सकता है कि समाज उसके ही चरित्र पर शक करने लगे।

इसी प्रकार से यदि घरेलू महिलाओं के हालात भी देखें तो वहां भी कोई संतोषजनक स्थिति देखने को नहीं मिलती। उन्हें सुबह से शाम तक घर और घरवालों कि तीमारदारी करनी पड़ती है। चाहे महिला कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों ना हो पर उसकी दुनिया और उसका संसार सिर्फ घर की चार दिवारी तक ही सीमित रहता है। उस से अपेक्षा कि जाती है वह बिना उफ़ किए किसी रोबोट कि तरह दिन-रात घर के काम करती रहे। पति, सास-ससुर की सेवा, बच्चों का ख्याल, घर का चूल्हा-चौंका, साफ़-सफाई और आए-गए का ध्यान रखना, उसके दैनिक कार्यों का हिस्सा है।

घरेलू महिला नैना बताती हैं कि शादी के बाद उनमें खूब जोश था और घर के सारे काम भाग-भाग कर किया करती थी। लिहाजा कुछ ही दिनों में घरवालों और रिश्तेदारों से खूब वाह-वाही मिलने लगी कि बहु काम-काज बहुत तेज है। पर पहला बच्चा होने के बाद शरीर ने साथ देना बंद कर दिया और काम-काज में उतनी तेजी नहीं रही जितनी पहले कभी हुआ करती थी। नतीजा ये हुआ कि वाह-वाही धिक्कार, लानत में बदल गयी। सास कहने लगी के शादी के एक साल बाद ही बहु को हवा लग गयी है। दिन भर टी$_0$ वी$_0$ के चक्कर में लगी रहती है, सत्यानाश हो इस टी$_0$ वी$_0$ का। परन्तु किसी ने यह जानने की कोशिश नही कि की क्यों इतनी कमेरी बहु काम में मन नही लगाती। अक्सर घरेलू महिलाएं शारीरिक कमजोरी के चलते घर के काम-काज में उतनी दक्ष नही रहती जितनी कि वह बच्चे होने से पहले होती है। डॉ$_0$ रा$_0$ म$_0$ लोहिया हस्पताल कि महिला रोग विशेषज्ञ डॉ$_0$ रेणुका मलिक बताती हैं कि औरतों में कमजोरी की बड़ी वजह कुपोषण है। जो भी लोग अपनी बीवी, बहु को दिखाने आते हैं सभी को स्वस्थ बच्चा तो चाहिए पर माँ को पौष्टिक आहार देने में उन्हें तकलीफ होती है। ९५% लोग हमारी बताई हुई डाइट चार्ट को फॉलो ही नहीं करते। अधिकतर महिलाओं में आयरन और विटामिन-DDDD की कमी पाई जाती है। अधिकतर लोग बार-बार बोलने पर भी यह दवा खरीद गर्भवती महिलाओं को नही देते ना ही उन खाद्य पदार्थों की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं जिनसे यह दोनों तत्व मिलते है। परिणामत: बच्चे कमजोर पैदा होते हैं जिसका ठीकरा औरत के सिर ही फोड़ दिया जाता है।

घरेलू महिलाएं घर और घरवालों का ख्याल रखते-रखते खुद का ख्याल रखना ही भूल जाती हैं। खुद के खाने-पीने का ध्यान नहीं रखती। जिससे कार्य करने की क्षमता एक हद के बाद कम होने लगती है। नतीजा यह होता है सास कि नज़रों में खटकने लगती हैं क्योंकि सास खुद से या कभी-कभी दूसरों की बहुओं से भी अपनी बहु कि तुलना करने लगती हैं जिससे संबंधों में दरार पड़ती है और महिलाओं को शारीरिक कष्ट के साथ-साथ भीषण मानसिक पीड़ा के भी दौर से भी गुजरना पड़ता है।

घरेलू काम-काज का मौद्रिक मूल्य - दैनिक भास्कर के २०१५ के महिला दिवस के महिला विशेषांक में छपी एक विस्तृत रिपोर्ट में महिलाओं की घरेलू कामकाजी गतिविधियों को मौद्रिक मूल्य के हिसाब से नापा गया है। इस रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है कि देश कि लगभग १६ करोड़ महिलाओं का मुख्य काम केवल घर की जिम्मदारियों को निभाना है। घरेलू कामकाज को समाज में भावनात्मक स्तर पर पेश किया जाता है। इसे भावनात्मक काम बताया जाता है इसीलिए यह श्रमिक कभी हड़ताल नहीं करते। जबकि इनके बिना हम अपने घरेलू जीवन कि कल्पना भी नही कर सकते।

एक उदाहरण में एक महिला कि दुर्घटना में मृत्यु हुई तो उसे नगण्य मुआवजा दिया गया क्योंकि घरेलू काम को काम ही नही माना जाता। इसके अलावा घरेलू महिलाओं को कोई भी कंपनी बीमा नही देती क्योंकि उनकि कोई व्यक्तिगत आमदनी नहीं होती।

यदि घरेलू कामकाज को भी श्रम कि दृष्टी से देखा जाये तो इस स्थिति को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। यदि घरेलू कामों को कौशल पूर्ण श्रम मान कर आंकलन करें तो घरेलू काम के लिए एक महिला को औसत मजदुरी के रूप में २३८ रु$_0$ का भुगतान प्रतिदिन करना होता है जो देश कि १६ करोड़ महिलाओं के हिसाब से साल भर का श्रम मूल्य १६२८६ करोड़ रु$_0$ होता है। यह राशी सरकार के २०१५-१६ के बजट के लगभग बराबर है।

श्रम कि परिभाषा मानवीय मूल्यों पर आधारित नहीं होती, यदि होती तो नि:संदेह स्त्री के योगदान को पहचान मिलती और उसका मुल्यांकन होता। सवाल यही है कि घरेलू काम को आर्थिक रूप से अनुत्पादक काम कि श्रेणी में क्यों रखा जाता है? ऐसे कई मौके आए हैं जब देश के न्यायलयों ने भी महिलाओं के घरेलू काम को आर्थिक रूप में रेखांकित किया है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायधीश जी$_0$ एस$_0$ सिंघवी और ऐ$_0$ के$_0$ गांगुली कि युगल पीठ ने एक आदेश में इस महत्त्व को

रेखांकित किया जिसमे उन्होंने परिवार से महिला के श्रम का मुल्यांकन करते हुए मुआवजा राशी बढ़ाने के आदेश दिए।

महिलाओं के इस योगदान को अर्थव्यवस्था में अदृश्य बना दिया गया है। महिलाओं के इस योगदान को हमें इमानदारी से स्वीकार करना होगा ताकि एक कामगार के रूप में उनके स्वास्थ्य, पोषण, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा सहित राजनैतिक-आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक अधिकारों को सुरक्षित करने की पहल की जा सके।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है महिलाएं समाज में सर्वोच्च स्थान रखती हैं परन्तु पुरुष-प्रधान यह समाज उसे वह स्थान देने को तैयार नहीं है जिसकी वह अधिकारी हैं। पुरुष ने सदियों से सर्वोच्च स्थान हथिया कर रखा है। ऐसा नहीं है के वर्तमान समय में महिलाओं के लिए कहीं से आवाजें नहीं उठती। भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी अपनी प्रत्येक विदेशी यात्रा पर विदेशों में भाषण के दौरान उनकि सरकार का द्वारा चलाये जा रहे अभियान 'बेटी बचाओ बेटी पढाओ', 'सेल्फी विथ डॉटर' इत्यादि महिला सम्बन्धी योजनाओं का जिक्र जरुर करते हैं। परन्तु एक चीज और ध्यान में रखनी होगी कि प्रधान मंत्री जी ऐसी बेटी को जन्म देने का भी क्या फायदा जिसे हमारा समाज इसकी मुख्य धारा में बराबरी का भी दर्जा न दे सके। उसे यह एहसास न करा सके कि उसके बिना जीवन संभव ही नहीं है। इस सृष्टी में सबसे महत्वपूर्ण अगर कुछ है तो वह केवल स्त्री है।

यदि उपरोक्त सभी परिस्थितियों पर सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो हम पाएंगे की स्त्री दलित की परिभाषा में पूरी तरह फिट बैठती हैं। दलित कोई एक विशेष जाति न हो कर एक पूरा का पूरा वर्ग है जो कि दबा, कुचला और अपने अधिकारों से वंचित है। इस वर्ग की महिलाओं के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती। किसी भी समय की यदि वास्तविक स्थिति जाननी हो तो उसमे स्त्री कि स्थिति का विचार करना लाज़मी, प्रासंगिक होगा। दलित प्रश्न की तरह नारी प्रश्न भी आज ज्वलंत विषय है। वास्तविकता यह है कि यह वर्ग इस नई सदी में अपने अस्तित्व और अस्मिता पर स्वयं विचार करने के लिए जागा है। इसकी समस्त बेचैनी मनुष्य और अधिक मनुष्य अर्थात मानवीय बनाने का प्रयत्न करना है। आज इस आवाज़ को बहुत सी महिला लेखिकाएं शब्दों का रूप दे रही हैं। जब स्त्री को लगा कि उसका अस्तित्व, स्थान, अधिकार और आजादी संकट में है तो उसे अपने विचारों को अभिव्यक्ति देनी पड़ी। इसलिए स्त्री विमर्श का मूल स्वर प्रतिरोध रहा है। उसका विचार लोक स्वाभाविक रूप से विकास नहीं हो पाता क्योंकि छवि के बने– बनाएं चौखटों को तोड़कर बाहर निकलने की chatpatahat छटपटाहट स्त्री के अन्दर युगों से चली आ रही है। हकीकत यही है कि जब नारीवाद का ब्रांड बिकाऊ नहीं बना था तब भी मुक्ति और परिवर्तन कि कामना स्त्री में कहीं गहरे बैठी थी।

इस दलित मुक्ति के संभावित उपाय- स्त्री के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए समय-समय पर आवाजें उठती रहीं हैं, इन्ही आवाज़ों के दबाव में सरकारें भी लगभग प्रयास करती रही हैं। महिलाओं को बराबर का दर्जा देने का प्रयास किया गया है। इन प्रयासों के कुछ सकारात्मक परिणाम भी देखने को मिले हैं। आज विभिन्न सेवाओं में महिलाओं कि उपस्थिति बढ़ी है। वह भी अब विभिन्न नौकरियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले रहीं हैं। यदि देश की सबसे प्रतिष्ठित सिविल सेवा परीक्षा के पिछले कुछ वर्षों के परिणाम देखें जायें तो हम पाएंगे कि महिलाओं की उपस्थिति के साथ-साथ उनकी सफलता भी अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। परन्तु फिर भी उसका मानसिक स्तर हम उतना ऊँचा नहीं उठा पाए हैं कि जिससे वह स्वयं को स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में स्थापित कर सके। स्त्री रुपी दलित की मुक्ति के लिए निम्न दीर्घकालिक उपाय किये जा सकते हैं:-

१. उन्हें बचपन से ही मानसिक रूप से इतना सशक्त बनाना चाहिए कि वह कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना डट कर सकें और उसे पुरुषों के सहारे की जरूरत ही न पड़े चाहे फिर वह पुरुष चाहे पति, भाई, पिता या कोई भी क्यों न हो। बच्चियों को बचपन से ही मानसिक रूप से तैयार किया जाना चाहिये कि वह किसी भी पुरुष पर निर्भर नहीं है वह स्वयं ही सही निर्णय ले सकती सकती हैं। वह चाहें तो बिना किसी सहारे के पुरुषों की तरह ही स्वतंत्र जीवन जी सकती हैं।
२. बच्चियों को उन सभी उपायों से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिनसे वह आत्मरक्षा के गुर सीख सके और जरूरत पड़ने पर खुद की रक्षा खुद ही कर सकें और जरूरत के समय उन्हें किसी सहारे को न खोजना पड़े। उन्हें जुडो-कराटे, हथियार चलाने कि ट्रेनिंग दी जानी चाहिए।
३. उन्हें उन सभी खेलों और प्रोफेशन में प्रशिक्षण और प्रोत्साहन मिलना चाहिए जिनमे पुरुषों का वर्चस्व रहा है जैसे घुड़सवारी, निशानेबाजी, ड्राइविंग, पायलट इत्यादि।
४. चुनावी लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनश्चित करने के लिए घडियाली आंसू बहाने की बजाये इमानदारी से प्रयास करने चाहिए। संसद में महिला आरक्षण का बिल आज भी किसी कोने कहीं धूल खा रहा है। नारों और दलगत राजनीति से ऊपर उठ कर सामूहिक रूप से प्रयास किया जाना चाहिए।
५. आज भी बहुत सी महिलाएं उच्च शिक्षा से वंचित रह जाती है। उनकी शिक्षा स्तर में सुधार के लिए प्रयास लिए जाने चाहिए।
६. चलचित्र और विज्ञापनों का प्रभाव व्यापक होता है। सेंसर बोर्ड को ऐसे चलचित्र और विज्ञापनो पर रोक लगा देनी चाहिए जिसमे महिलाओं को एक सामान या प्रदर्शनी वस्तु की तरह दिखाया जाता है। इनमें काम करने वाली महिलाओं को भी अगर हो सके तो इस तरह के कंटेंट का बायकाट करना चाहिए।

उपरोक्त चर्चा से यह तो स्पष्ट है कि यदि समाज में कोई दलित है तो वह केवल महिलाएं हैं। इस दलित के उद्धार के लिए केवल दो ही उपाय हैं या तो इमानदारी से उसे वह स्थान दे दिया जाना चाहिए जिसकी वह हकदार है या फिर दूसरा उपाय है किसी अम्बेडकर के आने का इंतज़ार किया जाये कि वह आयेगा और इस दलित वर्ग को फिर से सदियों कि दासता से मुक्त करवाएगा। पर इन्तजार की सूरत में मानव जाती और अधिक गर्त में जाती चली जाएगी और फिर एक दिन कोई ऐसा तूफ़ान उठ खड़ा होगा जो पुरुषों के इस मिथ्या वर्चस्व को तहस-नहस कर देगा। फैसला अब हमें ही करना होगा।

संदर्भ सूचीं

१. विकीपीडिया, दलित शब्द की परिभाषा।
२. दैनिक भास्कर (हरियाणा), ८ मार्च २०१५।